

[2014] 11 एस. सी. आर 85

बिनोद कुमार और अन्य

बनाम्

बिहार राज्य और अन्य

(2014 की आपराधिक अपील संख्या 2327)

30 अक्टूबर, 2014

[टी. एस. ठाकुर और आर. भानुमती, न्यायमूर्ति]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482-आपराधिक कार्यवाही यू/एस 406/पी. सी.-उच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकार को रद्द करना-आयोजित:की गई कार्रवाई को रद्द करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग, केवल तभी कार्यवाही की जाती है जब शिकायत किसी अपराध का खुलासा करती है या तुच्छ होती है-वर्तमान मामले में जो शिकायत बेईमानी गबन या धोखाधड़ी का मामला बनाती है-रद्द की जा सकती है।

अपील को देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

1. अपराधी पर शुरू की गई कार्यवाही में शिकायत, कार्यवाही को रद्द करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग केवल उन मामलों में किया जाता है जहां शिकायत किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करती है या तुच्छ है। शक्ति यू/एस 482 Cr.P.C. का सावधानीपूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए, इसका उपयोग यह देखने के लिए किया जाना चाहिए कि कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग न हो। शिकायत/एफ. आई. आर. को रद्द करने के स्तर पर, उच्च न्यायालय को उस पर लगाए गए आरोपों की संभावना, विश्वसनीयता या वास्तविकता के रूप में जांच शुरू नहीं करनी है। [पैरा 9] [89-सी-डी]

श्रीमती. नागावा बनाम वीरन्ना शिवलिंगप्पा कोंजलगी (1976) 3 एस. सी. सी. 736:1976 पूरक एस. सी. आर. 123; इंडियन ऑयल निगम बनाम एन. ई. पी. सी. इंडिया लिमिटेड और अन्य (2006) 6 एससीसी 736:2006 (3) पूरक एससीआर 704-पर निर्भर।

2.1 वर्तमान मामले में, शिकायत में, प्रथम दृष्टया में एस. 405 आई.पी.सी. अवयवों को आकर्षित करने वाले कोई आरोप नहीं लगाए गए हैं। इस संबंध में संपत्ति के दुरुपयोग करने का कोई बेईमान आरोप नहीं है। आपराधिक विश्वासघात का मामला बनाने के लिए, यह पर्याप्त नहीं है कि पैसा रोका गया है। यह भी दिखाया जाना चाहिए कि अपीलकर्ताओं ने किसी तरह से इसका बेईमानी से निपटारा किया या बेईमानी से इसे बरकरार रखा।केवल यह तथ्य कि अपीलकर्ताओं ने शिकायतकर्ता को पैसे का भुगतान नहीं किया, विश्वास का आपराधिक उल्लंघन नहीं है। [पैरा 18] [96-डी-एफ]

2.2 आपराधिक कार्यवाही अन्य उपचारों के लिए एक शॉर्टकट नहीं है। चूंकि विश्वासघात का कोई आपराधिक मामला या प्रलोभन के बेईमान इरादे का कोई केस नहीं बनाया जा सकता और एसएस 405/420 के आवश्यक तत्व। आई. पी. सी. को रद्द किया जा सकता है। [पैरा 19] [96-एच; 97-ए] यू.एस.एस. 406/120 बी. आई.पी.सी. के तहत अपीलार्थियों के अभियोजन को रद्द किया जा सकता है।

कानून संदर्भ मामला

1976 (0) पूरक एससीआर 123	इस पर भरोसा किया	पारा 9
2006 (3) पूरक एससीआर 704	इस पर भरोसा किया	पारा 10

आपराधिक अपील्य क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 2327/2014

विविध आवेदन संख्या- 10656/2003 में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश की तारीख 18.02.2011 से

अपीलार्थियों की ओर से डॉ. मनीष सिंघवी, अतुल झा, संदीप झा, धर्मेन्द्र कुमार सिन्हा।

उत्तरदाताओं के लिए प्रेरणा सिंह, गोपाल सिंह, राजीव कुमार, कुसुम चौधरी।

न्यायालय का निर्णय आर. भानुमति, न्यायमूर्ति

निर्णय

अनुमति दी गई।

2. क्या भारतीय दंड संहिता की धारा ४०६ के तहत आरोप और प्रत्यर्थी नं. २ को देय बिल राशि को कथित रूप से बनाए रखने के लिए आपराधिक विश्वासघात के लिए आपराधिक शिकायत इस अपील में विचार के लिए आने वाला मुद्दा है।

3. निष्पादित संविदा से संबंधित बिल का भुगतान तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय में दूसरे प्रत्यर्थी द्वारा एक विचित्र इतिहास था. दूसरे प्रत्यर्थी का मामला है कि उसके और के. एस. एस. कॉलेज के बीच ४. ९. १९९० को तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय की एक घटक इकाई, के. एस. एस. कॉलेज, लखीसराय के भवन के निर्माण के लिए अनुबंध किया गया था। दूसरे प्रतिवादी के अनुसार, चूंकि उसे समय पर धन और आवश्यक सामग्री नहीं दी गई, इसलिए निर्धारित अवधि के भीतर काम पूरा नहीं किया गया। विश्वविद्यालय ने ९. ५. १९९५ दिनांकित पत्र द्वारा प्रत्यर्थी नं. २ को सूचित किया कि उसका अनुबंध समाप्त हो गया है और अंतिम बिल, बयाना राशि और प्रतिभूति जमा आदि सहित उसके सभी बकाये कॉलेज विकास समिति के परामर्श के बाद जारी किए जाएंगे। विश्वविद्यालय के इंजीनियर ने कॉलेज के प्राचार्य को संबोधित दिनांक 4.6.1996 के पत्र द्वारा सूचित किया कि ठेकेदार को 48,505/- रुपये का भुगतान देय है, लेकिन प्रत्यर्थी नं. 2 को उपरोक्त

बिल राशि का भुगतान नहीं किया गया था। अंत में, प्रत्यर्थी को कॉलेज विकास समिति के निर्देश के अनुसार चेक नं. ईएमजीसीओ-ओपीजेड नं. ०१२७६२७ द्वारा रु. १४, ०००/- का भुगतान किया गया और शेष राशि रु. 34, 505/- जिसका उन्हें भुगतान नहीं किया गया। पूरी राशि का कथित रूप से भुगतान न किए जाने से व्यथित प्रत्यर्थी नं. 2 ने अनुमंडलीय न्यायिक दंडाधिकारी, लखीसराय, लखीसराय की अदालत में आपराधिक विश्वासघात के लिए आपराधिक शिकायत मामला संख्या १९६-सी/१९९७ दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि रु. ३४, ५०५/- की राशि का उसे भुगतान नहीं किया गया था और यह कि अपीलार्थियों द्वारा किसी अन्य कार्य में राशि का उपयोग किया गया था।

4. अपीलार्थियों ने इसके तहत एक आवेदन दायर किया अनुमंडलीय न्यायिक दंडाधिकारी, लखीसराय की अदालत के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के तहत उन्हें आपराधिक मामले से बरी करने की मांग की गई। अनुमंडलीय न्यायिक दंडाधिकारी, लखीसराय की अदालत ने दिनांक 2.12.2002 के अपने आदेश द्वारा उक्त याचिका को खारिज कर दिया और अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 406/120 बी के तहत आरोप तय करने के लिए 8.1.2003 को अदालत में उपस्थित रहने का निर्देश दिया। इससे व्यथित, अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत पटना उच्च न्यायालय में कथित आदेश को रद्द करने के लिए एक याचिका दायर किया, उच्च न्यायालय ने दिनांक 18.02.2011 के आपेक्षित आदेश द्वारा उक्त याचिका को खारिज कर दिया। उससे व्यथित होकर अपीलार्थीगण हमारे समक्ष हैं।

5. डॉ. मनीष सिंघवी, अधिवक्ता उपस्थित अपीलार्थियों की ओर से तर्क दिया कि दूसरे प्रत्यर्थी को भुगतान रोके रखने का कार्य कुलपति द्वारा जारी किए गए निर्देश के अनुसार था और भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के तहत निधियों के दुर्विनियोजन के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है। ऐसा कहा जाता है कि अपीलार्थियों ने अपना कर्तव्य जनहित के लिए किया है न की बेईमानी के इरादे से

राशि का दुरुपयोग किया है और न ही कोई अपराधिक विश्वघात का मामला बनता है जिसे पटना उच्च न्यायालय द्वारा ध्यान में नहीं लिया गया।

6. सुश्री प्रेरणा सिंह, प्रतिवादी की विद्वत अधिवक्ता प्रतिवादी संख्या 1- बिहार राज्य ने प्रस्तुत किया कि तत्काल याचिका किसी भी पुलिस मामले से संबंधित नहीं है और यह मामला कभी भी पुलिस जांच के अधीन नहीं था.हालांकि, यह प्रस्तुत किया गया कि चार गवाहों की जांच के बाद, दंडाधिकारी ने पाया कि अपीलकर्ताओं के खिलाफ एक प्रथम दृष्टया मामला बनता है और इसलिए, उच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दायर याचिका को उचित रूप से खारिज कर दिया।

7. श्री राजीव कुमार, विद्वत अधिवक्ता दूसरे प्रतिवादी ने तर्क दिया कि आवेदन उन्मोचन को दंडाधिकारी द्वारा सही तरीके से अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि दूसरे प्रत्यर्थी द्वारा दायर किया गया मामला पुलिस प्रतिवेदन के अलावा एक परवाना का मामला है और चूंकि प्रथम दृष्टया मामला बनता है, इसलिए निचली अदालत द्वारा विमुक्ति आवेदन को उचित रूप से खारिज कर दिया गया था। यह भी तर्क दिया गया कि अनुबंध के नियमों और शर्तों के अनुसार, दूसरे प्रत्यर्थी ने काम को निष्पादित किया था और विश्वविद्यालय के इंजीनियर द्वारा भी इसका मापन और सत्यापन किया गया था और इसलिए, अपीलकर्ताओं ने दुर्भावनापूर्ण इरादे से दूसरे प्रत्यर्थी के बकाये को रोक दिया और इस प्रकार, आपराधिक विश्वास भंग किया और उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४८२ के तहत दायर याचिका को उचित रूप से खारिज कर दिया।

8. हमने प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और आक्षेपित आदेश और अभिलेख पर सामग्री का भी अवलोकन किया।

9. आपराधिक शिकायत पर संस्थित कार्यवाहियों में, कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग केवल उस स्थिति में किया जाता है जहां शिकायत किसी अपराध का प्रकटन नहीं करती है या तुच्छ है।यह

अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का कम से कम उपयोग किया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए कि कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग या दुरुपयोग न हो, इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। कानून का स्थापित सिद्धांत यह है कि शिकायत/प्रथम सूचना प्रतिवेदन को अभिखंडित करने के चरण में उच्च न्यायालय को इसमें लगाए गए अभिकथनों की संभाव्यता, विश्वसनीयता या वास्तविकता के बारे में जांच शुरू नहीं करनी है। श्रीमती नागवा बनाम वीरन्ना शिवलिंगप्पा कोंजालगी, (1976) 3 एस. सी. सी. 736 वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसे मामलों की गणना की जहां अभियुक्त के विरुद्ध दंडाधिकारी द्वारा जारी प्रक्रिया का आदेश निम्नलिखित रूप में अभिखंडित या अपास्त किया जा सकता है:

"(1) जहां परिवाद में किए गए अभिकथन या उसके समर्थन में अभिलिखित किए गए गवाहों के कथन, उनके अंकित मूल्य पर लिए गए, अभियुक्त या परिवादी के विरुद्ध कोई भी मामला बिल्कुल ही ऐसे अपराध के आवश्यक घटकों का प्रकटन नहीं करता है जो अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथित है;

(2) जहां शिकायत में लगाए गए आरोप पूरी तरह से बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, ताकि कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर न पहुंच सके कि अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त आधार है;

(3) जहां जारी करने की प्रक्रिया में दंडाधिकारी द्वारा प्रयोग किया गया विवेकाधिकार स्वेच्छापूर्ण और मनमाना है जो या तो बिना किसी साक्ष्य या सामग्री पर आधारित है जो पूरी तरह से अप्रासंगिक या अस्वीकार्य है; और

(4) जहां परिवाद मूल विधिक दोषों से ग्रस्त है जैसे, मंजूरी की कमी या विधिक रूप से सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवाद की अनुपस्थिति आदि।”

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जिन मामलों का उल्लेख किया गया है, वे पूरी तरह से दृष्टांतकारी हैं और उन आकस्मिक स्थितियों को इंगित करने के लिए पर्याप्त दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं जहां उच्च न्यायालय कार्यवाही को रद्द कर सकता है।

10. इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड और अन्य, (2006) 6 एस. सी. सी. 736, इस न्यायालय ने शिकायतों और आपराधिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों को संक्षेप में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है:

इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में शिकायतों और आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार के उपयोग से संबंधित सिद्धांतों को बताया गया है और दोहराया गया है। इनमें से कुछ का उल्लेख करना चाहूंगा-माधवराव जीवाजीराव

“सिंधिया बनाम संभाजीराव चन्द्रोजीराव आंगरे (1988) 1 एससीसी 692, हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्लीमेंट (1) एससीसी 335 रूपम देओल बजाज बनाम कनवरपाल सिंह गिल (1995) 6 एससीसी 194 केन्द्रिय अन्वेषण ब्यूरो बनाम डेकन्स एग्रो इन्डस्ट्री लिमिटेड (1996) 5 एससीसी 391 बायोलॉजिकल ई. लिमिटेड (2000) 3 एस. सी. सी. 269 हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य (2000) 4 एस. सी. सी. 168, एम. कृष्णन बनाम विजय सिंह (2001) 8 एस. सी. सी. 645 और जंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड

बनाम भारत संघ (1995) 4 एस. सी. सी. 467.मो.शराफुल हक (2005) 1 एससीसी 122। हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक सिद्धांत हैं:

(i) शिकायत को वहां खारिज किया जा सकता है जहां शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही वे उनके समग्र रूप से स्वीकार किए गए हों, प्रथमदृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं या अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथित मामले का पता नहीं लगाते हैं।

इस उद्देश्य के लिए, शिकायत की समग्र रूप से जांच की जानी है, लेकिन आरोपों के गुण-दोष की जांच किए बिना। शिकायत को रद्द करने के लिए प्रार्थना की जांच करते समय न तो विस्तृत जांच की आवश्यकता है और न ही सामग्री का सटीक विश्लेषण और न ही शिकायत में आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता का आकलन किया जाना चाहिए।

(ii) जहां यह न्यायालय की प्रक्रिया का स्पष्ट दुरुपयोग है वहां शिकायत को भी खारिज किया जा सकता है, क्योंकि जब यह पाया जाता है कि आपराधिक कार्यवाही प्रतिशोध लेने या हानि पहुंचाने के लिए दुर्भावना/विद्वेष के साथ शुरू की गई है, या जहां आरोप बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं।

(iii) तथापि, अभिखंडित करने की शक्ति का उपयोग वैध अभियोजन का गला घोटने या उसे कुचलने के लिए नहीं किया जाएगा। शक्ति का उपयोग बहुत कम और अत्यधिक सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

(iv) शिकायत को अभिकथित अपराध के विधिक अवयवों को शब्दशः पुनः प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। यदि शिकायत में आवश्यक तथ्यात्मक आधार रखा जाता है, तो केवल इस

आधार पर कि कुछ अवयवों का विस्तार से उल्लेख नहीं किया गया है, कार्यवाही को रद्द नहीं किया जाना चाहिए। शिकायत को रद्द करना तभी आवश्यक है जब शिकायत बुनियादी तथ्यों से भी इतनी वंचित हो, जो अपराध को अंजाम देने के लिए बेहद आवश्यक हैं।

(v) तथ्यों का दिया गया समुच्चय निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकता है: विशुद्ध रूप से दांडिक अपराध या एक वाणिज्यिक लेन-देन या एक संविदात्मक विवाद, सिविल कानून में उपचार के लिए वाद हेतुक प्रस्तुत करने के अलावा, एक आपराधिक अपराध भी शामिल हो सकता है। चूंकि सिविल कार्यवाही की प्रकृति और गुंजाइश दांडिक कार्यवाही से भिन्न होती है, केवल यह तथ्य कि शिकायत किसी वाणिज्यिक लेन-देन या संविदा के भंग से संबंधित है, जिसके लिए कोई सिविल उपचार उपलब्ध है या प्राप्त किया गया है, अपने आप में दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने का आधार नहीं है। जांच यह है कि शिकायत में लगाए गए आरोप किसी आपराधिक अपराध का खुलासा करते हैं या नहीं।”

11. व्यापार में बढ़ती प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए भारतीय तेल निगम के मामले (पूर्वोक्त) के पैरा (13) और (14) में विशुद्ध रूप से सिविल विवादों को आपराधिक मामलों में परिवर्तित करने के लिए निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया था:.

“13. इस मुद्दे पर, विशुद्ध रूप से दीवानी विवादों को आपराधिक मामलों में परिवर्तित करने की कारोबारी हलकों में बढ़ती प्रवृत्ति का संज्ञान लेना आवश्यक है। यह स्पष्ट रूप से एक प्रचलित धारणा के कारण है कि सिविल कानून के उपाय समय लेने वाले हैं और उधारदाताओं/लेनदारों के हितों की पर्याप्त रक्षा नहीं करते हैं। कई पारिवारिक विवादों में भी ऐसी प्रवृत्ति देखी जाती है, जिससे

विवाह/परिवार असुधार्य रूप से टूट जाते हैं। यह भी धारणा है कि यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार से आपराधिक अभियोजन में उलझ सकता है, तो उसके शीघ्र निपटान की संभावना है। आपराधिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डालकर सिविल विवादों और दावों, जिनमें कोई आपराधिक अपराध शामिल नहीं है, को निपटाने के किसी भी प्रयास की निंदा की जानी चाहिए और हतोत्साहित किया जाना चाहिए। जी. सागर सूरी सूरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2000) 2 एससीसी 636 कंडिका 8 में इस न्यायालय का ऐसा मानना है कि

“यह देखा जाना चाहिए कि क्या किसी मामले को, जो अनिवार्य रूप से सिविल प्रकृति का है, दांडिक अपराध का आवरण दिया गया है। आपराधिक कार्यवाही कानून में उपलब्ध अन्य उपचारों का एक छोटा हिस्सा नहीं है। प्रक्रिया जारी करने से पहले आपराधिक न्यायालय को बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है। आरोपी के लिए यह एक गंभीर मामला है। इस न्यायालय ने कुछ सिद्धांत निर्धारित किए हैं जिनके आधार पर उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करना है। इस धारा के अधीन अधिकारिता का प्रयोग किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाना है।”

14. जबकि किसी वैध हेतुक या शिकायत वाले किसी भी व्यक्ति को आपराधिक कानून में उपलब्ध उपचार की तलाश करने से नहीं रोका जाना चाहिए, एक शिकायतकर्ता जो इस बात से पूरी तरह अवगत होने के कारण अभियोजन शुरू करता है या जारी रखता है

कि आपराधिक कार्यवाहियां अनावश्यक हैं और उनका उपचार केवल सिविल कानून में है, ऐसी भ्रामक आपराधिक कार्यवाहियों के अंत में, कानून के अनुसार, स्वयं को जवाबदेह बनाया जाना चाहिए। अनावश्यक अभियोजन और निर्दोष पक्षों के उत्पीड़न को रोकने के लिए अदालतों द्वारा एक सकारात्मक कदम उठाया जा सकता है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 250 के तहत अपनी शक्तियों का अधिक बार उपयोग करना, जहां वे शिकायतकर्ता की ओर से दुर्भावना या तुच्छ या गुप्त उद्देश्यों को देखते हैं। चाहे जो भी हो।”

12. इस मामले के तथ्यों की बात करें तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह सच है कि विवाद प्रत्यर्थी नं. 2 द्वारा निष्पादित अनुबंध से संबंधित ३४५०५/- की बिल राशि का भुगतान न करने से संबंधित है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रत्यर्थी नं. 2 ने सीडब्ल्यूजेसी सं०. 5803/1999 को प्राथमिकता दी, जिसमें पटना उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 5.4.2000 का एक आदेश पारित किया गया था, जिसमें भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति को 1.10.1994 से भुगतान की तारीख तक 18% की दर से 34,505 रुपये की शेष राशि ब्याज के साथ जारी करने और 1.10.1994 से 9.12.1996 तक 14,000 रुपये की राशि पर 11% की दर से ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। उक्त आदेश से असंतुष्ट भागलपुर विश्वविद्यालय ने एलपीए संख्या 716/2000 को प्राथमिकता दी, जिसमें यह निर्देश दिया गया था कि चूंकि यह एक वैधानिक अनुबंध नहीं था, इसलिए धन के भुगतान के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता था और प्रत्यर्थी संख्या 2 धन की वसूली के लिए कानून में उपलब्ध अन्य उपायों का अनुसरण कर सकता था, से पीड़ित है। कथित आदेश, व्यथित होकर प्रत्यर्थी नं. 2 ने एस एल पी (सी) नं. सी. सी. ४८३२/२००९ दाखिल की, जिसे इस न्यायालय द्वारा ३०. ७. २००९ के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया, उसे उचित मंच पर जाने की स्वतंत्रता देते हुए खारिज कर दिया गया। उसके बाद प्रत्यर्थी नं. 2 ने रु. ६९, ०९०/- की वसूली के

लिए २०. ४. २००२ को अवर न्यायाधीश १, प्रथम न्यायालय, लखीसराय के समक्ष धन वाद नं. २/२००२ दाखिल किया, अर्थात रु. ३४, ५०५/- की दोगुनी राशि और कथित वाद लंबित है। विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करने वाले दूसरे अपीलकर्ता ने भी उसी न्यायालय में 4.2.2006 को दूसरे प्रत्यर्थी-ठेकेदार के खिलाफ ब्याज सहित 1,44,437 रुपये की राशि का दावा करते हुए धन वाद संख्या 2/2006 दायर किया था। पक्षों के इन कार्यों से पता चलता है कि पक्षों ने पहले से ही कानून में उपलब्ध सिविल उपायों का सहारा लिया है।

13. अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 को तब निम्नलिखित रूप में नियोजित किया गया था। केएसएस कॉलेज, लखीसराय में क्रमशः प्रिंसिपल और प्रोफेसर और कथित कॉलेज के कोषाध्यक्ष के रूप में अपीलकर्ता नं. 3. अपीलार्थियों ने कहा है कि उनका रु. ३४५०५/- की राशि को धोखा देने या बेईमानी से दुरुपयोग करने का कोई इरादा नहीं था। अपीलार्थियों ने कहा है कि किए गए काम की गुणवत्ता और कुछ सीमेंट की थैलियों को न लौटाने को लेकर विवाद थे। दूसरे प्रतिवादी द्वारा यह कहा गया है कि विश्वविद्यालय और ठेकेदार के बीच विवाद और दूसरे प्रतिवादी द्वारा आगे के निर्माण को रोकने के मद्देनजर और कुलपति के निर्देश और अनुमोदन से, अपीलकर्ता का अनुबंध समाप्त कर दिया गया था और उसका बिल कॉलेज विकास समिति के समक्ष रखा गया था। अपनी दिनांक 8.12.1995 की बैठक में समिति ने दूसरे प्रत्यर्थी के दावे पर विचार किया और उसके कतिपय दावों को अस्वीकार कर दिया और इसकी सूचना कुलपति को दे दी गई। विश्वविद्यालय ने दिनांक 25.03.1998 के पत्र संख्या ई/243 के माध्यम से दूसरे प्रतिवादी को अंतिम भुगतान रोकने का निर्देश दिया और विश्वविद्यालय ने कार्य की गुणवत्ता के सत्यापन के लिए कार्यकारी अभियंता से अनुरोध किया। अपीलार्थियों ने कहा है कि रु. ३४, ५०५/- की राशि विश्वविद्यालय के खाते में पड़ी हुई है और केवल कुलपति के निर्देश पर, राशि का दूसरे प्रतिवादी को भुगतान नहीं किया गया था और अपीलार्थियों के किसी भी बेईमान इरादे को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

14. इस स्तर पर हमारा सरोकार केवल प्रश्न यह उठता है कि क्या शिकायत में उनके अंकित मूल्य पर लिए गए प्रकथन आपराधिक अपराध के अवयवों को साबित करते हैं या नहीं। आइए अब हम इस बात की जांच करें कि क्या शिकायत में लगाए गए आरोप सही हैं और क्या वे धारा 406 के तहत परिभाषित अपराध हैं।

15. भारतीय दंड संहिता की धारा 405 आपराधिक विश्वासघात से संबंधित है। भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के सावधानीपूर्वक पठन से पता चलता है कि आपराधिक न्यास भंग में निम्नलिखित तत्व शामिल हैं:

(क) किसी व्यक्ति को संपत्ति सौंपी जानी चाहिए या संपत्ति पर प्रभुता सौंपी जानी चाहिए

(ख) उस व्यक्ति को बेईमानी से उस संपत्ति का अनुचित उपयोग करना चाहिए या उसे अपने स्वयं के उपयोग में संपरिवर्तित करना चाहिए या बेईमानी से उस संपत्ति का उपयोग करना चाहिए या उसका निपटान करना चाहिए या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने के लिए कष्ट देना चाहिए।

(ग) ऐसा दुर्विनियोग, संपरिवर्तन, उपयोग या निपटान उस विधि के किसी निदेश का अतिक्रमण होना चाहिए जिसमें वह रीति विहित की गई हो जिसमें ऐसे न्यास का निर्वहन किया जाना है, या किसी ऐसी विधिक संविदा का, जो व्यक्ति ने ऐसे न्यास के निर्वहन के संबंध में की है।

16. भारतीय दंड संहिता की धारा 406 अपराधी के लिए दंड निर्धारित करती है। भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अभियोजन को साबित करना चाहिए:

(i) अभियुक्त को संपत्ति सौंपी गई थी या उस पर प्रभुता सौंपी गई थी और

(ii) (क) उसने इसका दुर्विनियोग किया, या (ख) इसे अपने उपयोग में परिवर्तित किया, या (ग) इसका उपयोग किया, या (घ) इसका निपटान किया।

अपराध का सार बेईमान तरीके से किया गया दुर्विनियोजन है। उक्त अपराध के दो अलग-अलग भाग हैं। पहले में सौंपने का तथ्य शामिल है, जिसमें उस संपत्ति के संबंध में बाध्यता उत्पन्न होती है जिस पर प्रभुत्व या नियंत्रण अर्जित किया गया है। दूसरा भाग दुर्विनियोजन से संबंधित है जो सृजित की गई बाध्यता की शर्तों के विपरीत होना चाहिए।

17. आईपीसी की धारा 420 धोखाधड़ी से संबंधित है। आवश्यक भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के घटक इस प्रकार हैं: किसी मूल्यवान प्रतिभूति को बनाने, बदलने या नष्ट करने के लिए बेईमान प्रलोभन देना या ऐसी कोई वस्तु जिसे सील किया गया है या हस्ताक्षरित किया गया है या मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सकता है।

18. वर्तमान मामले में, आरोपों को देखते हुए इसी प्रकार, अपीलार्थियों द्वारा अपने लिए अनुचित लाभ प्राप्त करने या अनुचित रूप से हानि कारित करने के लिए धन को अपने पास रखने में धोखाधड़ी या बेईमान इरादे के बारे में कोई आरोप नहीं है। शिकायतकर्ता आरोपों को छोड़कर कि अपीलार्थियों ने दूसरे प्रत्यर्थी को भुगतान नहीं किया और यह कि अपीलार्थियों ने स्वयं या किसी अन्य कार्य के लिए धनराशि का उपयोग किया, संपत्ति के दुर्विनियोजन में बेईमान इरादे के बारे में कोई आरोप नहीं है। अपराधिक न्यास भंग का मामला बनाने के लिए, यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि अपीलार्थियों द्वारा धन प्रतिधारित किया गया है। यह भी दिखाया जाना चाहिए कि अपीलकर्ताओं ने किसी तरह से बेईमानी से उसका निपटान किया या बेईमानी से उसे बरकरार रखा। केवल यह तथ्य कि अपीलार्थियों ने शिकायतकर्ता को पैसे का भुगतान नहीं किया, अपराधिक विश्वासघात नहीं है।

19. भले ही शिकायत में लगाए गए सभी आरोप हमारे विचार में, पक्षपात सही हैं, बेईमान दुर्विनियोग और धोखाधड़ी के मूल आवश्यक तत्व गायब हैं। आपराधिक कार्यवाही अन्य उपचारों के लिए एक शॉर्टकट नहीं है। चूंकि विश्वास के आपराधिक उल्लंघन या प्रलोभन के बेईमान इरादे का कोई मामला नहीं बनता और भारतीय दंड संहिता की धारा 405/420 के आवश्यक तत्व गायब हैं, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 405/420 के अंतर्गत आने वाले अपराधों को रोकने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 405 और 420 के अंतर्गत आने वाले अपराधों को रोकने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 405 और 420 के अंतर्गत आने वाले अपराधों को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाए गए हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 406/120 बी के तहत अपीलकर्ताओं के अभियोजन को रद्द किया जा सकता है।

20. उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है और यह अपील स्वीकार की जाती है। पक्षकार उन सिविल वादों में, जिनका वे पहले ही आश्रय ले चुके हैं, अपना उपचार निकालने के लिए स्वतंत्र हैं।

(टीएस ठाकुर) न्यायमूर्ति

(आर. भानुमति) न्यायमूर्ति

नई दिल्ली,

30 अक्टूबर, 2014

खण्डन (डिस्क्लेमर):— स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।